साक्षात्कार

'रुकावट के लिए खेद है' के बाद का 'सीन' और भी आकर्षक हो–गुलाब सिंह

वार्ताकार–अवनीश सिंह चौहान

अवनीशः अपने काव्य संस्कार की पृष्ठ भूमि के बारे में बतायें।

गु.सिंहः संस्कार और परिवेश दोनों का प्रभाव रचनाकार पर होता है। संस्कार में बीजत्व और परिवेश में प्रस्फुटन की शक्ति होती है। सायास और आरोपित रचना तुकबंदी हो सकती है कविता नहीं। छोटी उम्र से ही मुझे काव्यात्मक परिवेश उपलब्ध था। मेरे मामा स्व0 श्री लालबहादुर सिंह चंदेल सिद्धहस्त लोक कवि थे। हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि पं0 छविनाथ मिश्र भी उसी गांव में थे। इन दोंनों मनीषियों से मुझे प्रेरणा–प्रोत्साहन और आशीष प्राप्त हुआ।

अवनीशः आप की पहली रचना किस विधा में थी और वह कब छपी थी?

गु.सिंहः 1957 में मैं इण्टरमीडिएट का छात्र था उसी वर्ष विद्यालय का रजत जयन्ती समारोह आयोजित था। साहित्यिक कार्यकमों की कड़ी में कविता–कहानी और लेख की प्रतियोगितायें कराई गयीं थीं। पुरस्कृत रचनायें विद्यालय की पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। मेरी कविता 'कमल की पंखुड़ी' और लेख 'हिन्दी लोकगीतों में भारतीय संस्कृति' का प्रकाशन किया गया था। इससे बड़े दायरे में मेरी कहानी 'चन्द्रलोक की यात्रा' 1964 में 'साप्ताहिक प्रकाश' (कलकत्ता) में छपी तथा पहला गीत 'आज' (वाराणसी) के साप्ताहिक अंक में 1967 में प्रकाशित हुआ।

अवनीशः प्रारम्भिक दौर से लेकर एक सफल रचनाकार बनने तक आप को किस प्रकार का संघर्ष करना पड़ा?

गु.सिंहः मेरा संघर्ष उन तमाम रचनाकारों से मिलता जुलता है जिनके सिर पर किसी का हाथ नहीं होता, जो किसी सरनाम रचनाकार का उत्तराधिकारी नहीं होता, जो परिश्रम के बाद भी प्रकाशकीय संकट से गुजरता है और जो स्वप्रेरणा से ही कुछ कर सकने की आत्मक्षमता को पहचान पाता है। 'आज' में कविता छपने के बाद लेखन के प्रति अधिक उत्साहित और गम्भीर हुआ। गीत नवगीत को छिटपुट चर्चा के बीच में इसकी खूबियों को पहचान नहीं पा रहा था। दक्षिणांचल से मीरजापुर स्थानान्तरित होने पर मैं श्री मधुकर मिश्र तथा डॉ0 भवदेव पाण्डेय के सानिध्य में आया। तमाम मुद्दों पर बहस होती थी। अपनी रचनायें एक दूसरे के सामने रखकर निर्मम प्रतिकिया व्यक्त की जाती थी। यहीं 1973 में मेरा एक गीत 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुआ। मित्रों–परिचितों

की बधाइयों से मैं अभिभूत हुआ। डॉ0 धर्मवीर भारती जैसे संपादक के चयन में आ जाना मेरे लिए जैसे कवि होने का प्रमाणपत्र था। सौभाग्य से मेरे कई दर्जन नवगीत 'धर्मयुग' जैसी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की पत्रिका में अनवरत छपे। मेरे नवगीत संग्रह 'धूल भरे पाँव' की पाण्डुलिपि पुरस्कृत हुई। इस पुरस्कार की निर्णायक समिति में हिन्दी के तीन दिग्गज विद्वान समीक्षक थे। मै अपने साहित्यिक जीवन और कृतित्व से न कभी किसी मुगालते में रहा और न ही कभी निराश ही हुआ। इस दृष्टि से आज भी मैं संतुष्ट और प्रसन्न हूँ। रही बात 'सफल रचनाकार बनने' की तो इस सम्बन्ध में मै खुद बचा कह सकता हूँ।

अवनीशः आप के परिचितों के अनुसार शिक्षा विभाग में आप की छवि एक ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ एवं संतोषी अध्यापक की रही। क्या इससे भी आप के कवि कर्म को बल मिला?

गु.सिंहः मुझे अपने सेवाकाल में कभी कोई ग्लानि नहीं हुई। मैं जहां भी रहा मेरे अधिकारियों और सहकर्मियों ने मुझे अतिरिक्त समादर और सम्मान दिया। मै उन सब के प्रति कृतज्ञ हूँ। संभव है इससे मेरा आत्मविश्वास और भी दृढ हुआ हो।

अवनीशः घर–गाँव की स्थितियों और स्मृतियों से आप के कविमन को किस प्रकार की प्रेरणा मिली?

गु.सिंहः गांव घर की स्मृतियां और परिस्थितियां तो अत्यन्त कटु ही रहीं। 'शब्दों के हाथी पर ऊँघता महावत है/ गांव मेरा लाठी और भैंस की कहावत है'– जैसे अनेक गीत उसी पीड़ा से सृजित हुए। लेकिन कटुता के बीच माधुर्य की तलाश करता मैं आजीवन गांव में ही टिका रह गया। विरोधों और विसंगतियों को कायरता की हद तक बरदास्त करता रहा, शायद इसलिए भी कि समय सब से ताकतवर होता है, वह सब कुछ उलटता–पलटता रहता है और राहत देता रहता है। 'बौर आए हैं'/संतजन धूनी रमाये, 'आम के सिर मौर आए हैं'। गांवों की सांस्कृतिक विरासत और नैसर्गिक सौंदर्य के बीच उदास मन भी उत्फुल्लता का अनुभव करता रहा।

अवनीशः आप की रचनाओं में जहां आधुनिक गांव–समाज की संगत एवं विसंगत छवियां देखने को मिलती हैं वहीं मानवी संवाद भी स्थापित होता चलता है आप के द्वारा गढे हुए प्रतीकों–विम्बों के चिन्तनपरक चित्रांकन एवं रागवेशित भावाभिव्यक्ति से। यह कब कैसे बन पड़ता है?

गु.सिंहः कविता में विम्ब एक झलक की तरह उभरते हैं। इस बिम्बावृति के चित्रांकन को स्थूलताओं से घेरा नहीं जा सकता। इसलिए रचना में विम्बों की अतिशयता से बचना भी जरूरी होता है। कविता या किसी भी विधा के सारे रचनात्मक कौशल सारहीन हो जाते हैं, अगर उनमें मनुष्य से संवाद स्थापित करने की शक्ति नहीं है। कथा में जहां पृष्ठ भूमि और परिवेशगत चित्रों और विम्बों को दूर तक फैलाया और विश्लेषित किया जा सकता है, वही कविता में उतनी गुंजाइश (खासकर गीतों में) नहीं होती। कविता फैलाव को समेटती है, इसीलिए उसमें सघनता और गहनता की अपेक्षा की जाती है। गीत में विचार, चिंतन, भावना, कल्पना और संवेदना का समेकित घोल कई रसायनों के समेकित अवलेह की तरह होता है।

अवनीशः 'काल प्रवाह में कोई विधा कालजयी नहीं होती, कालजयी होती है रचना'। दिनेश सिंह के इस कथन पर आप की क्या राय है?

गु.सिंहः यह कथन निर्विवाद है। तमाम लोकगीत, छन्दबद्ध कहावतें, मुहावरे ऐसे हैं जो अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं पर उनके रचयिता अज्ञात हैं। विधा और शैली बदलती रहती है, किन्तु महान कृति युगों तक उसी रूप में प्रभावित करती है। इसीलिए ऐसी कृतियों को कालजयी कहा जाता है। रचना ही नाम को बड़ा बनाती है। रचनाकार का अमरत्व उतना असंदिग्ध नहीं है, जितना किसी महान अर्थात् क्लासिक कृति का। आज इस विन्दु पर रचना की जगह नाम को महत्व देने की प्रवृत्ति के कारण क्लासिक रचनाओं की संख्या नगण्य होती जा रही है।

अवनीशः गीत और नई कविता की संवेदना में मूलभूत अन्तर क्या है। नई कविता के मुकाबले गीत वर्तमान भौतिकता एवं अमानवीयता से टकराने में कितना सक्षम है?

गु.सिंहः संवेदना–शून्य होकर न कविता लिखी जा सकती है न गीत। क्योंकि रूप का जो अन्तर दिखाई पड़ता है, वह वाह्य है, भीतर दोनों एक हैं। मूल्यक्षरण और अमानवीयता के प्रति गहरा आक्रोश दोनों ही शैलियों में देखा जा सकता है। आज के गीत अथवा नवगीत इस मुद्दे पर पहले की अपेक्षा अधिक सतर्क हैं। उनके परिवर्तित रूप का यह मूल आधार है। रही बात सारी विसंगतियों से टकराने की तो इसके लिए समाज की मनःस्थिति का सहयोग आवश्यक होता है। 'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है किन्तु चारों तरफ जंजीरों से जकड़ता जाता है' फ्रांस की महान क्रांति के प्रेरक के रूप में यह कथन इतना महत्वपूर्ण इसीलिए हो पाया कि तत्कालीन फ्रांसीसी समाज राजशाही से मुक्ति का तीव्र आकांक्षी था। आज सभी साहित्यिक विधाओं का सारा आक्रोश निष्क्रिय हो जा रहा है क्योंकि समाज अनैतिकता और सुविधावाद के दलदल में आकण्ठ डूबता चला जा रहा है। गीत छान्दस होते हैं, नई कविता गद्य के निकट होती है। संवेदना और लय के बिना न गीत संभव है न छन्दहीन कविता।

अवनीशः पिछली पीढ़ी एवं आज के गीतकारों के शिल्प एवं कथ्य में क्या अंतर है?

गु.सिंहः पहले गीतों में मांसल एवं चाक्षुष सौंदर्य की ओर विशेष आकर्षण था, इसीलिए वे वर्णनात्मक होते थे। आज के गीतों में अपने समय और जीवन में व्याप्त विसंगतियों से टकराने और संघर्ष करने की प्रेरणा व्याप्त है। अब 'विहंगम दृष्टि' की जगह गम्भीर और दूर दृष्टि की अपेक्षा की जाती है। आज का शिल्प खुरदुरा, सघन और सार–संक्षेप के निकट है।

अवनीशः साहित्य की लगभग सभी विधाएँ दिनदूनी रात चौगुनी फूल–फल रही हैं, किन्तु परिवार समग्र राष्ट्र, समूह और वैश्विक समस्याओं की पृष्ठभूमि में क्या उत्तरदायित्वपूर्ण अभिव्यक्ति विकसित हो पा रही है, यदि नही तो क्यों?

गु.सिंहः शब्दों और भाषा के औजार से जीवन को तराशने और खोट को निकालने की प्रतिश्रुति प्रायः हर रचनाकार की होती है। शब्द लेकर शब्द देने के अति साधारण से लगने वाले व्यापार के पीछे जो प्रविधि होती है, वही इसे साधारण से विशिष्ट बनाती है। यह कौशल जिसे जिस सीमा तक हासिल है वह उतना ही बड़ा शब्द शिल्पी बन पाता है। शब्द संयोजक और शब्द शिल्पी में ठेठ नियमन और मौलिक निर्माण का फर्क होता है। मृद्रण सुविधाओं के कारण साहित्य की विविध विधाओं को 'फलने–फूलने' का अवसर प्राप्त है, लेकिन मूल्यवान अभिव्यक्ति तो जीवन के व्यापक सरोकारों से जुड़ने पर ही संभव है। साहित्यकार तो औरों के लिए ही जीता–मरता रह जाता है। अपवादों को छोड़कर अधिसंख्य साहित्यिकार अपने लिए जीने की समयावधि और सरंजाम जुटा ही नहीं पाते। यह बात अलग है कि कौन कितना कुछ कर पाता है। रचनाकार की ऊर्जा, निष्ठा, अध्ययन और दृष्टि रचना का कैनवास अथवा फलक तय करती है और उसी अनुपात में कृति का 'क्लासिक' हो पाना संभव होता है। आज परिवार, समूह, राष्ट्र और विश्व की समस्याओं की पृष्ठभूमि पर ही खड़े होने की जगह है। अब कल्पना भूमि स्वतः हट गई है। जैसे संपूर्ण कृष्ण का द र्शन दिव्य दृष्टि से ही संभव हुआ, उसी तरह बड़ी रचना के लिए बड़ी सर्जनात्मक ताकत भी अभीष्ट है। इधर एक दूसरा 'फेज' भी फिलहाल महत्वपूर्ण हो चला है जिसके पीछे विज्ञापन का जितना बड़ा नेटवर्क है, वह उतना ही बड़ा लेखक है। जब अकारण नृशंश हत्या करना एक चर्चित व्यवसाय बनता जा रहा है तथा आत्मघाती हमला एक नई औद्योगिक क्रांति का रूप ले रहा है तो बड़ी से बड़ी प्रतिभा भी हतप्रभ है, लेकिन इस दिशाहीन आंधी के सामने वह कौन सा अवरोधी करिश्मा कर सकता है, इस सोच में हर सर्जक डूबा है। इस तेज बहाव वाले कटान पर वह मूल्यों की मिट्टी जमाने की कोशिश में लगा है। वैसे सृजन को तो श ांति, सुचिंतन, स्थायित्व और गहन संवेदना की दरकार होती है।

अवनीशः गीत के उद्देश्य क्या हैं? जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, मूल्यों की स्थापना करने और बुनियादी समझ विकसित करने में इसकी क्या भूमिका है?

गु.सिंहः साहित्य के उद्देश्य से भिन्न गीत के कुछ अलग उद्देश्य नहीं हैं। जाहिर है कि साफ–सुथरा आचार–विचार सब के लिए रोटी, वस्त्र, आवास की व्यवस्था और दुनिया के साथ आगे बढ़ने का हौसला इसके उद्देश्य की बुनियादी शर्तें हैं। व्यवस्था के श ोख रंगों के पीछे अव्यवस्था का जो 'प्राइमर' लगा रहता है, साहित्यकार उसी को खुरच कर सामने लाता है और आगाह करता है कि रंगों के साथ दगाबाजी बहला सकती है, कुछ बना नहीं सकती। आज के गीत ने अपनी कोमलता, रसात्मकता और वर्णनात्मकता को घटाकर अभिव्यक्ति की नई भंगिमाये अपनाते हुए जो खतरे उठाये हैं,उसके समर्थन और विरोध दोनों के स्वर सुनाई पड़ते हैं। गीतों की सहजता बुनियादी समझ विकसित करती है। गीतों की प्रवृत्ति पेचीदगी पैदा करने की नहीं है। समय और जीवन में व्याप्त विकृतियों के प्रति गीतकार के स्वर विरोध के तेवर के साथ सामने आते हैं। इसीलिए वह मूल्यहीनता का कटु निन्दक और मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रबल पक्षधर है।

अवनीशः गीत शिक्षा पाठ्यक्रम का विकास कैसे हो और इसे विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर कैसे लागू किया जाना चाहिए?

गु.सिंहः माध्यमिक स्तर तक तो 'वीणावादिनि वर दे' से आरम्भ और 'जन गण मन अधिनायक जय हे' से समापन की प्रथा चली

आ रही है। प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में भी गिनती–पहाड़े शब्दार्थ तक को याद करने की सरलता के कारण गेय तुकों का प्रयोग किया गया है। इसके पीछे तथ्य यही है कि गीतों को कण्ठाग्र करना आसान है। भाषणों में भी गीतों की पंक्तियाँ, गजल के शेरों, तथा मुक्तकों का प्रयोग धड़ल्ले से होता है। उच्च शिक्षा स्तर पर भी कुछ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इधर के गीतों को जगह मिली है। केवल वहां जहां पाठ्यक्रम समितियों में ऐसे सदस्य हैं जो गीत को भी गम्भीर साहित्यिक कर्म की श्रेणी में रखते हैं, किन्तु अधिकांश समितियों में गीत विरोधी मठाधीशों के ही स्थायी आसन सुनियोजित हैं। आजकल पाठ्यक्रमों और पाठ्य पुस्तकों के निर्धारण में एन.सी.ई.आर.टी. की भूमिका अहम है जो कबीर, सूर, तुलसी को कठिन तथा अज्ञेय, मुक्तिबोध को सरल समझ कर हेर–फेर करती रहती है। तटस्थ और खुले दिमाग वाले विद्वानों, शिक्षाविदों की पहल इस दिशा में उचित निर्णय ले सकती है।

अवनीशः गीत की नवीन प्रवृत्तियाँ कौन–कौन सी हैं, उनका आधार क्या है और वे आधुनिक जीवन को कितना प्रभावित कर पा रही है?

गु.सिंहः तुकों और आनुप्रासिकता की लीक पीटने से हटने का आग्रह, समाज के अन्तिम व्यक्ति के साथ खड़े होने का साहस, गलित और दुर्गन्धित राजनीति के प्रति तीव्र आक्रोश, तीखे व्यंग्य की अभिव्यक्ति के समय भी गीतितत्व की रक्षा, कहन की नई भंगिमाओं की तलाश, लोकतत्व और आधुनिकता का समन्वय, अपनी जमीन पर पाँव टिकाकर दुनिया जहान का दर्शन, बोलचाल के शब्दों तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का माकूल, स्वाभाविक तथा आयासहीन प्रयोग। कुहासाच्छादित सामाजिक जीवन में प्रकाश की किरणों को प्रदशित करने का कौशल, व्हाइट हाउस या इस तरह के किसी भी हाउस से उत्सर्जित कूटनीतिक किमियागीरी के प्रति जनजाग्रति की कोशिश, उक्तियों और मुहावरों का धारदार प्रयोग, गीत शैली की सीमाओं की पहचान और सारा जहाँ तर्जनी पर उठाने के बड़बोलेपन से परहेज, और संघर्ष में एक जागरूक नागरिक की भूमिका निभाते हुए व्यवस्था की क्रूरताओं के विरूद्ध रचनात्मक मुहिम नवगीतकारों का सृजन धर्म है। यहाँ उल्लिखित बिन्दुओं को नवगीत की प्रवृत्तिगत पहचान के रूप में देखा जा सकता है।

अवनीशः साहित्य तो खूब लिखा जा रहा है लेकिन उसकी ग्राह्यता (एडाप्शन) उस अनुपाद में बहुत कम है, आखिर क्यों?

गु.सिंहः इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने विस्तर पर लेटे–लेटे तमाम रंगीनी देखने के सरंजाम जुटा दिए हैं। जाहिर है कि गम्भीर उत्कृष्ट रचना के साथ पाठक को मनोयोगपूर्वक चलना पड़ता है। इतना करने के लिए अभिरूचि, माध्यम और समय आवश्यक है। हिन्दी पट्टी में साहित्य के प्रति ऐसा पाठकीय समर्पण भाव कम ही दिखाई पड़ता है। लेकिन गम्भीर पाठकों की विरलता की बात करते समय उच्चकोटि के लेखन का भी प्रश्न उठता है। रचना के साथ अपेक्षित श्रम और व्यापक एवं उदात्त दृष्टिकोण भी कम दिखाई पड़ता है। लोग जल्दी में हैं। संकलनों और 'टाइटिल्स' के ढेर लगाने या मीनार खड़ी कर देने मात्र से ही उसकी ग्राह्यता नहीं बढ़ जायेगी। सौ पृष्ठ की किताब का ढाई सौ रूपये मूल्य भी एक महत्वपूर्ण कारक है। मंहगाई की महामारी में जूझते लोगों के लिए यह पहलू काफी प्रभावी हो जाता हे। वैसे भी अन्य माध्यमाओं के कारण 'रीडरशिप' काफी घटी है। लोग कविता और गद्य के घालमेल के कारण भी खासकर कविता के प्रति उदासीन हो गए। गीत और नवगीत भी कई सौ की संख्या में हर महीने छप रहे

हैं। पहचानना मुश्किल हो रहा है कि कौन किसका लिखा हुआ है। शैली और भाषा के आधार पर सब कुछ एक ही चासनी में डूबा लगता है और ऊब पैदा करता है।

अवनीशः साहित्य या कविता का अर्थशास्त्र क्या है? इसकी अवधारणा तथा इसके विचारणीय विन्दु क्या हैं?

गु.सिंहः अर्थकरी विद्या' की अवधारणा पुरानी है। लेखन से अर्थार्जन भी उसका एक आयाम रहा है। आचार्य मम्मट ने भी 'अर्थहिते' को महत्व दिया है। अर्थ के लिए तथा यश के लिए साहित्य सृजन किया जाना चाहिए। अब पैसा और कीर्ति एक में जुड़ गए हैं। समय की गतियां बदलती रहती हैं। जिस साहित्यकार की कृति का वितरण जितना अधिक है, जिसकी रॉयल्टी की राशि करोड़ों में है, उसके महान होने के पीछे यह बहुत बड़ा गुण–तत्व बन गया है। कविता या साहित्य का अर्थशास्त्र मनुष्य है। मनुष्य दलित है या सिरमौर भिखारी या अरबपति कोई भी हो सकता है, वह साहित्य से बाहर नहीं है। कविता का अर्थशास्त्र कवि के पक्ष में नहीं है। प्रकाशकों की मानें तो कविता की पुस्तकें बिकती ही नहीं, तो उससे 'अर्थकरी विद्या' या 'अर्थहिते' सिद्धान्त कैसे व्यवहृत हो पायेगा?

अवनीशः युवा पीढ़ी के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

गु.सिंहः युवा पीढ़ी काफी जागरूक है। उसके सामने वरिष्ठ या कनिष्ठ के भेद का खास अर्थ नहीं रह गया है। उसमें परिश्रम को सर्वाधिक मूल्यवान समझने की प्रवृत्ति दृढ़ होगी तो शार्टकट से परहेज करने का विचार अपने आप प्रबल होगा। खासकर गीत–नवगीत के क्षेत्र में लोग जहाँ तक पहुँच चुके हैं उसके आगे का सोचना और आगे की यात्रा करने का निश्चय आना चाहिये। 'रूकावट के लिये खेद है' के बाद का 'सीन' और आकर्षक होना चाहिए। गीतों के बीच 'वंशी और मादल' (ठाकुर प्रसाद सिंह) ने एक समय जैसी हलचल पैदा की थी वैसी ही लीक से हटकर हलचल पैदा करने वाली किसी कृति की प्रतीक्षा है।

गुलाब सिंह
ग्रा. व पो.–बिगहनी
जि0–इलाहाबाद (उ.प्र.)–213505
मो0–09936379937

–अवनीश सिंह चौहान
चन्दपुरा, इटावा (उ.प्र.)
मो.–09456011560